International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 13 Issue 4, July-August, 2025

गुरु रविदास जी के काव्य में दार्शनिक तत्व

बलवान सिंह[1], डॉ. अजयपाल सिंह[2]

[1]शोधार्थी, हिन्दी विभाग, देश भगत विश्वविद्यालय मंडी गोबिन्दगढ़, पंजाब
[2]शोध निर्देशक, हिन्दी विभाग, देश भगत विश्वविद्यालय मंडी गोबिन्दगढ़, पंजाब

सारांष

विचार या बुद्धि तत्व कवि का जीवन दर्शन होता है जिसे वह काव्य के माध्यम से प्रकट करता है। विचार कवि के अन्तर्मन से उपजते हैं और बाद में वे विविध रूप धारण कर लेते हैं। अर्थात काव्य कवि के मौलिक व्यक्तित्व का प्रतीक है जिससे वह अपनी मनोस्थितियों और भावनाओं को संप्रेषीत करता है। संत महापुरुषों की भक्ति–भावना में से कई मनोभाव वाणी के रूप में प्रकट होते हैं। संत काव्य स्व–अनुभूति की कसौटी पर कसे ज्ञान को प्रस्तुत करता है और कहीं–कहीं उसे अकथनीय विचारों को प्रकट करने के लिए कल्पना का भी सहारा लेना पडता है।

मूल षब्द : मौलिक संप्रेषीत कसौटी अकथनीय

दर्शन में तार्किक ज्ञान को अधिक महत्त्व दिया जाता है । डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार – 'दर्शन' अन्तर्ज्ञान को तर्क के आधार पर सिद्ध करना और उसका प्रचार करना है ।

संत काव्य तर्कपूर्ण दर्शन नहीं। फिलासफी मुख्य रूप से पारभौतिक विषयों के सम्पूर्ण तार्किक और तरतीवबार अध्ययन को कहते हैं।

"संतों के काव्य दर्शन में आत्म–गहराइओं के भीतर ईश्वरीय गहराइओं के रहस्यात्मक अनुभवों के मादक स्वाद का सौंदर्यमय वर्णन होता है।"[1]

संतों की वाणी चाहे आध्यात्मिक रंग में रंगी है, फिर भी संतों ने ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मुक्ति संबंधी अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है जिसमें से उनके दार्शनिक विचार उभर कर सामने आते हैं। संत जब अखंड आनंद की अवस्था को प्राप्त करते हैं तो ही मन, बुद्धि का प्रारंभिक सफ़र तह कर ही असली मुकाम पर पहुँचते हैं। चाहे वह ज्ञान, योग, कर्म और भक्ति मार्ग को तह कर चुके होते हैं फिर भी जीव जगत, माया की प्रकृति को अनदेखा नहीं कर सकते। मुक्ति प्राप्त करने के लिए वे अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं । तुरिया अवस्थायों के अनुभव में से जहां मन–बुद्धि कायम रहते हैं, वहाँ दार्शनिक विचार भी प्रकट होते हैं । असल में संत दार्शनिकता को अपने अनुभव की कसौटी पर जांच कर भक्ति के परमाथी तथ्यों को सहज भाव में व्यक्त करते हैं।

डॉ. शांति नाथ गुप्ता के अनुसार– "भारतीय दार्शनिक परंपरा के अनुसार सच्चा दार्शनिक वह होता है जो अंतर ध्यान हो कर समूचे तत्व को प्रत्यक्ष अनुभव कर जीवन की सच्चाइयों को प्रकट करे परंतु ऐसे दार्शनिक विरले होते हैं।"[2]

दर्शन का अर्थ बुद्धि द्वारा प्राप्त सारे दृष्टिकोण हैं। हम कौन हैं ? कहाँ से आए हैं ? दृष्टिमान जगत क्या है ? सृष्टि की रचना कैसे हुई ? सृष्टि का रचनाहार कौन है ? आदि मूल प्रश्नों को विवेक के आधार पर देखना ही दर्शन है। संत उपर्युक्त प्रश्नों के समाधान निजी अनुभूति अनुसार वाणी में प्रकट करते हैं। अतरू वह सच्चे दार्शनिक होते हैं।

गुरु रविदास जी की वाणी में ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मुक्ति आदि अटल सत्यों का वर्णन है जो मन की आकांक्षाओं को संतुष्ट करके मानवीय अनुभव को और समृद्ध बनाते हैं।

गुरु रविदास जी के काव्य का केंद्र बिन्दु ईश्वर है। ब्रह्म का वर्णन करना कठिन है क्योंकि पूरे जगत में एक ही है। उसके जैसा कोई दूसरा नहीं है जिससे उसकी उपमा की जा सके –

"कहि रविदास अकथ कथा बहु काइ करीजै ॥
जैसा तू तैसा तूही किआ उपमा दीजै ॥"[3]

ईश्वर सूक्ष्म शक्ति है जिसमें क्रिया नहीं पर उस कारण सब में क्रिया है। वह कर्म–अकर्म से परे है। प्रभु सर्वगुण संपन्न भी है और गुणातीत भी है। वह सृष्टि के साकार रूप में निर्गुण रूप में समाया है। वह निर्विकार, निर्भय, अविनाशी और सहज है –

"निहचल निराकार अज अनुपम। निरभै अति गोबिंदा ॥
आगम अगोचर अछर अतरक निरगुन अति आनंदा ॥
सदा अतीत गयान घन बरजित निरबीकार अबिनासी ॥
कहै रविदास सहज सूनंनि सति जीवन मुकति निधि कासी ॥"[4]

गुरु रविदास जी के अनुसार ईश्वर एक है, ओंकार है, जिसका तीनों लोकों में पसारा है परमात्मा ही सृष्टि का सृजनहार है, सर्वव्यापी है, सब में उसकी ज्योति समाई हुई है–

"चहुं दिसि दिवला वरि रहै जगजग हैव रहयो रे।
जोति जोति समजोति जोति में हिलमिल रहयो रे ॥"[5]
प्रभु सगुण, निर्गुण में समान रूप में विद्यमान है –
"अगुण सगुण डॉ. समकरि जानयो
चहुं दिस दरसन तोरा ॥"[6]

ईश्वर गुणातीत है। इस लिए वह निर्गुण में सगुण और निराकार में साकार है –

"सोई बसि रसि मन मिलै, गुन निरगुन एक बिचार ॥"[7]
एक निर्गुण अनेक में समाया है –
एक ही एक अनेक होइ बिसथरीउ
आन रे आन भरपूरि सोऊ ॥"[8]

जीव – गुरु रविदास जी ने वैज्ञानिक दृष्टि से मानव की भीतरी बनावट का बहुत सुंदर चित्र खींचा है । मानव शरीर कोशिकायों से बना है जिसमें जीवन का आधार पानी है । जीव हवा के सहारे जीवित है । मानव शरीर का निर्माण वीर्य और रक्त से होता है । इसके अतिरिक्त यह हड्डियों एवं मास का ढांचा है जिसमें पक्षी के रूप में रूह वास करती है –

"जल की भीति पवन का ठमभा रकत बूंद का गारा ।
हाड मास नाड़ी को पिंजर, पंखी बसै बिचारा ॥"[9]

रविदास जी के अनुसार सृष्टि के आरंभ में एक ईश्वर था, अंत में भी एक ही रहता है, फिर वर्तमान सृष्टि के लोग सभी को अलग–अलग दृष्टि से क्यों देखते हैं ? इसका का उत्तर भी स्वयं रविदास जी अपने काव्य में देते हुए कहते हैं कि ईश्वर एक है, वह सभी में समान रूप में समाया हुआ है, सबका मूल एक ही है। बाहरी रूप–रंग के कारण एक–दूसरे में विभिन्नता नज़र आती है। जिस प्रकार सोने से बने गहने अलग प्रतीत होते हैं, पानी और पानी से उठी लहरें अलग लगती हैं पर इनका मूल एक ही है, इसी तरह समूची सृष्टि में एक ही ईश्वर का वास है, कोई एक दूसरे से भिन्न नहीं है –

"आदिहु ऐक अंत फुनि सोई मधय जो उपाधि कैसे।
है यहु एक भ्रम रू दूजो कनक अलंकृत जैसे ॥"[10]
गुरु जी के अनुसार ब्रह्म और जीव में कोई अंतर नहीं अर्थात अद्वैत है –
"तोही मोही मोही तोही अंतर कैसा । कनक कटक जल तरंग जैसा ।"[11]

माया जाल में फंस जाने के कारण राजा स्वप्न में भिखारी बन जाता है और दुखी होने लगता है। इसी प्रकार मनुष्य मोह–माया के जाल में फंस कर स्वयं को ब्रह्म से अलग समझ बैठता है। अज्ञानतावश वह सृष्टि के सृजनहार को भुला कर सभी के साथ द्वैत भरा व्यवहार करता है –

"माधो का कहीऐ भ्रम ऐसा ॥
जैसा मानिऐ होई ना तैसा ॥
नरपति ऐक सिंघासनि सोईआ, सुपने भइआ भिखारी ॥
अछत राज बिछुरत दुखु पाइआ, सो गति भई हमारी ॥"[12]
गुरु रविदास जी कहते हैं कि जीव अपने अवगुणों के कारण विकारों का शिकार होकर दुखी होता है –
"तूँ सुलितान सुलिताना, बंदा सकिसता अजाना ॥
मैं बंदिआनत बदनज़र दरद मंद बरखुदार ॥
मैं गुनहागार गुमराह गाफिल कमदिला करतार ॥"[13]
साधु–संत, गुर, भक्त, ब्रह्म ज्ञानी मुक्त जीव हैं जो प्रभु का सिमरन कर प्रभु कृपा के पात्र बन जाते हैं –
"संत अनंतहि अंतर नाहि ॥"[14]

सृष्टि की उत्पत्ति– प्रत्येक कार्य का कोई कर्ता या कारण होता है। भारतीय पौराणिक परंपरा में सृष्टि की उत्पत्ति के कई कारणों का वर्णन है। जैसे ब्रह्म, जल, वायु, अगिन, प्रकाश, आकाश, द्रव्यों का संयोग (सतो, तमो, रजो) आदि। सृष्टि की प्रत्येक छोटी सी छोटी वस्तु में क्रिया हो रही है और यही क्रिया ज़िदगी है –

"एक ही एक अनेक होइ बिसथरिओ ॥
आन रे आन भरपूर सोइ ॥"[15]
"आदि मधय ऐसान ऐक रस, तार तूंब नहीं ताई।
बावर जंगम कीट पतंगा, पूरि रयो हरि राई ॥"[16]

पाँच–तत्व –मनुष्य शरीर पाँच तत्वों का बना है। आकाश, वायु, अगिन, जल और पृथ्वी के तत्व सभी में मौजूद हैं –

"पाँच तत जिनि कीया पसारा सो योही किंधु और रे ॥"[17]
माया से छुटकारा पा कर जीव को मुक्ति मिल सकती। राम–नाम जप कर जीव प्रभु से अभेद हो जाता है –

माया – सृष्टि का बाहरी विभिन्नता वाला रूप जो मानव को अज्ञानता कारण आकर्षित करता है, माया कहलाता है । माया अपने सुंदर रूप के कारण मानव को मोहित कर लेती है । यह वास्तव में प्रभु का ही रूप है लेकिन हम जगत के पसारे को स्थूल दृष्टि से देखते हैं । सूक्ष्म दृष्टि वाले के लिए प्रभु जगत में ही समाया हुआ है । इसलिए संतों ने माया के दोनों रूपों का वर्णन किया है । बाहरी रूप झूठा है क्योंकि यह समय के साथ बदल जाता है । कण–कण में ईश्वर का वास है । वह सदीवी सत्य है । जगत में इस रचनाहार को न देख पाना ही माया है –

"पाँच तत्त यहु त्रिगुणि माया ॥
जो दीसै सो सकल उपाया ॥"[18]

गुरु जी ने जहां माया की निंदा की है, वहाँ उसे सखी–सहेली भी कहा है । जब मानव माया में बुरी तरह से फंस जाता है तो माया का असली रूप सामने आता है –

"पाचो थकित भए जहां तहां थीति पाई ॥
जा कारनि मैं दोरयो फिरत सो अब घाट मैं आई ।
पांचों मेरी सखी सहेली तीन निधी दई दिखाई ॥"[19]

निर्वाण– मानव को माया से छुटकारा पाकर ही मुक्ति मिल सकती है । कुकर्मों के पत्थरों से भरी हुई जीवन–नौका संसार रूपी भवसागर में लोभ की तरंगों के थपेड़े खाकर डावांडोल हो जाती है । राम–नाम जप कर ही जीव प्रभु के साथ अभेद हो सकता है –

"झूठी माया जग दाहकाया ते तिनि ताप दहै रे ॥
कहै रविदास राम जप रसना, माया काहू के संग ना रहै रे ॥"[20]

गुरु रविदास जी के जन्म–मरण के बंधन से छुटकारा पाने को ही मुक्ति प्राप्त करना कहते हैं। गुरु जी ने मुक्ति के प्रकारों की बाँट नहीं की बल्कि उरवार मुक्ति को अधिक महत्व दिया। संसार में रहकर बंधन मुक्त होना ही उरवार मुक्ति है। प्रभु के साथ सदीवी मेल प्राप्त कर स्वर्ग का वासी बनना पार मुक्ति है। सहज अवस्था में से होते हुए आत्म प्रकाश द्वारा परम दिव्य ज्योति को अनुभव करना उरवार मुक्ति है जो पूर्ण विश्व को बेगमपुरा बनाती है –

"पार गया चाहे कोई, देहु उरवार पार नहीं होइ ॥
पार कहै उरवार सूँ पारा, बिन पद परचे भ्रमों गंवारा ॥"[21]

निष्कर्ष

पूरे विवरण के बाद हम कह सकते हैं कि गुरु रविदास जी की दार्शनिक विचारधारा मौलिक है। चाहे रविदास जी दार्शनिक नहीं थे परंतु उनके अनुभव के आधार पर प्रभु के साथ अभेदता में से जो आत्म–ज्ञान उन्हें प्राप्त हुआ, वह किसी विरले दार्शनिक को ही नसीब होता है।

संदर्भ–संकेत

[1]. डॉ. प्रेम प्रकाश सिंह, गुरु नानक और निर्गुण धारा, पृष्ठ – 53
[2]. डॉ. शांति नाथ गुप्ता, भारतीय दर्शन, पृष्ठ – 5
[3]. आदि ग्रंथ, पृष्ठ – 858
[4]. डॉ. धर्मपाल सिंगल, वाणी श्री गुरु रविदास जी, पृष्ठ – 65
[5]. डॉ. धर्मपाल सिंगल, वाणी श्री गुरु रविदास जी, पृष्ठ – 74
[6]. डॉ. धर्मपाल सिंगल, वाणी श्री गुरु रविदास जी, पृष्ठ – 73
[7]. आदि ग्रंथ, पृष्ठ – 346
[8]. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
[9]. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 70
[10]. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
[11]. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
[12]. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 34
[13]. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
[14]. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
[15]. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47

[16]. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 87
[17]. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
[18]. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 7
[19]. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 7
[20]. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
[21]. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47